International Journal of Physical Education, Sports and Health 2016; 3(6): 03-05

P-ISSN: 2394-1685
E-ISSN: 2394-1693
Impact Factor (ISRA): 5.38
IJPESH 2016; 3(6): 03-05
© 2016 IJPESH
www.kheljournal.com
Received: 02-09-2016
Accepted: 03-10-2016

डॉ0 निष्कर्ष शर्मा
योग प्रशिक्षक, योग विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

Correspondence
डॉ0 निष्कर्ष शर्मा
योग प्रशिक्षक, योग विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

अनियमित जीवन शैली से उत्पन्न दुष्प्रभावों की प्राणायाम पद्धति के द्वारा चिकित्सा–एक विवेचन

डॉ0 निष्कर्ष शर्मा

सारांश
शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता का एक प्रमुख कारण वर्तमान जीवन शैली है। वर्तमान जीवन शैली में काम का बोझ, देर से सोना, जल्दी न जागना या देर तक सोते रहना, समय की कमी के चलते खान–पान से समझौता करना, आहार में संतुलित पदार्थों की कमी, योग–व्यायाम के अभ्यास की कमी, त्रुटिपूर्ण मुद्रा में बैठना, पर्याप्त विश्राम न करना आदि आते हैं, जिससे शारीरिक तथा मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। मानव शरीर एक जटिल रासायनिक संरचना से चलता है। शरीर की जैविक घड़ी में शरीर की प्रत्येक रासायनिक क्रिया के संचालन के लिये एक विशेष समय निर्धारित होता है। मानव शरीर की सभी रासयनिक क्रियायें अनियमित हो जाती हैं अतः अनियमित आहार–विहार अस्वस्थता का एक प्रमुख कारण है। प्राणायाम एक शारीरिक व मानसिक व्यायाम के साथ–साथ एक प्राणवाहक बल का कार्य करता है। प्राण शक्ति के केन्द्रित तथा ऐच्छिक बल से मस्तिष्क तथा शारीरिक अंगों के अवरोध दूर होते हैं। इस कारण से प्राणायाम को गम्भीर शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा हेतु उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में अधिकाँश मनुष्य सामान्य मानसिक रोग जैसे– चिन्ता, अवसाद, भय आदि से पीड़ित हैं। व्यस्त जीवन शैली में प्राणायाम अर्थात् ऐच्छिक श्वास–प्रश्वास के थोड़े समय के अभ्यास से भी मानसिक स्थिरता प्राप्त कर अनियमित जीवन शैली से उत्पन्न रोगों से दूर रहा जा सकता है।

मूल शब्द: प्राणायाम, तनाव, प्राण

प्रस्तावना
इस सृष्टि में मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक निश्चित पथ पर चलता रहता है। एकमात्र मनुष्य को ही जीवन शैली के विषय में विचार करने की आवश्यकता होती है। मनुष्य स्वभाव से ही जिज्ञासु प्रवृति का है, वह किसी एक जीवन पद्धति के अनुसार जीवन जीने का अभ्यस्त नहीं है। मुख्य रूप से जीवन शैली के अन्तर्गत व्यक्ति का दृष्टिकोण, विचार, चिन्तनधारा व आचरण आदि के नियम जैसे प्रमुख तत्व कार्य करते हैं। मनुष्य जीवन को नियन्त्रित करने और सुखमय जीवन पथ पर गतिमान् करने के लिए संसार में धर्म के रूप में कुछ नियम बनाये गये हैं। विश्व में प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न दृष्टिकोण और भिन्न–भिन्न मान्यताओं के परिणाम स्वरूप बहुत सी जीवन पद्धतियाँ विकसित हुई हैं तथा देश, काल व परिस्थितियों के कारण इनमें समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है।
हमारी जीवन शैली हमारे सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती हैं। किसी भी जीवन पद्धति के महत्वपूर्ण अंगों के अन्तर्गत व्यक्ति की दैनिक क्रियायें, वैयक्तिक सिद्धान्त, सामाजिक नियम तथा नैसर्गिक नियमों का पालन करना आदि बातें आती हैं। यदि व्यक्ति उपर्युक्त बातों को समुचित रूप से अपने जीवन में अपनाता है तो उसका शरीर व मन निर्मल बना रहता है, उसमें किसी प्रकार का कोई विकार नहीं रहता और यदि व्यक्ति या समाज इनको समुचित रूप से जीवन में नहीं अपनाता तो उसका शरीर व मन विकारग्रस्त हो जाते हैं।
यौगिक दृष्टिकोण से चित्त की मूढ़ अवस्था तथा कभी–कभी विक्षिप्तावस्था में इस प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं, जैसे ये लक्षण हैं– तनाव (Stress), चिन्ता (Anxiety), अवसाद (Depression), भय (Fear) आदि। दूसरे प्रकार के मनोविक्षिप्तता रोग गम्भीर रोग हैं, जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्थायी रूप से विघटन हो जाता है। मनोविदलता (Schizophrenia), व्यामोह (Ellusion), अवस्तुसम्बोधन (Hallucination) एवं अतिउत्साह (Mania) आदि मानसिक रोग मनोविक्षिप्तता की श्रेणी में आते हैं। योग में चित्त की क्षिप्त अवस्था में इस तरह के लक्षण पाये जाते हैं। तीसरे प्रकार के मनोरोग शिशु की विकास अवस्था के दौरान परिस्थितिजन्य कारणों से सीखे हुए असंतुलित एवं उग्र व्यवहार हैं,

जिन्हें शीलगुण (Traits) भी कहा जाता है। योग दर्शन में मनोरोगों को चित्त विक्षेप के रूप में विवेचित किया गया है–

> व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वा नवस्थितत्वानि
> चित्तविक्षेपास्तेन्तरायाः। दुःखदौर्मनस्यामेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः।।[8]

अथार्त् व्याधि (शारीरिक रोग), संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्त्व ये चित्त के विघ्न योग साधना में बाधक हैं। दुःख (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक), दौर्मनस्य (इच्छापूर्ति न होने पर मन में उत्पन्न क्षोभ), अंगमेजयत्व एवं श्वास–प्रश्वास का अनियंत्रण, ये भी चित्त के विक्षेपों के साथ–साथ होने वाले बाधक रोग हैं। योग में इन विघ्नों को एकाग्रता द्वारा दूर करने के उपाय बताये गये हैं और एकाग्रता प्राप्त करने के लिए विभिन्न योग पद्धतियों का उल्लेख किया गया है।

मनोविज्ञान में रोगों के तीन कारण 1. जैविक (Biological), 2. मनोवैज्ञानिक (Psychological) तथा 3. सामाजिक (social) माने गये हैं। योग विज्ञान में मानसिक अस्वस्थता का मूल कारण पंचक्लेश को बताया गया है–

> अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।[1]

अर्थात् अविद्या, अस्मिता (अहंकार), राग (मोह), द्वेष (ईर्ष्या) और अभिनिवेश (मृत्यु भय) ये पाँच क्लेश हैं। अविद्या अन्य सभी क्लेशों की उत्पत्ति का कारण है। अनित्य (नश्वर) चीजों को नित्य समझना, संसार के दुःखदायी विषयों में सुख बुद्धि रखना अविद्या कहा गया है। जिस व्यक्ति के अन्दर जितनी अविद्या की भावना होगी उसका चित्त उतना ही अस्थिर होगा। योग में आत्मा तथा चित्त की अभिन्न प्रतीति को अस्मिता कहा गया है। मैं और मेरा की भावना से मनुष्य का चित्त क्रोधी एवं भयावह होता है और मानसिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न होती है। विषयों के प्रति तृष्णा राग कहलाती है। मोह के कारण व्यक्ति उचित तथा अनुचित का भेद भूल जाता है। वर्तमान युग में आर्थिक तृष्णा राग का प्रबल उदाहरण है, जिसमें व्यक्ति उचित या अनुचित किसी भी प्रकार से अधिक से अधिक धन अर्जित करना चाहता है। विषयों को बार–बार भोगने की इच्छा से मनुष्य का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। द्वेष, सुख की स्मृति से उत्पन्न दुःख है। राग के मार्ग में बाधक वस्तुयें द्वेष (ईष्या, घृणा, एवं क्रोध) उत्पन्न करती हैं। अतः द्वेष से मनुष्य का चित्त उन्मादी तथा भयावह हो जाता है। योग में मृत्यु भय को अभिनिवेश कहा गया है। मनुष्य के चित्त में उत्पन्न सभी प्रकार के भय का योग फल मृत्यु भय है। मृत्यु भय मानव चित्त को अशान्त एवं अस्थिर किये रहता है।

सभी मानसिक रोगों का सामान्य लक्षण है– चित्त (मन) की अस्थिरता। योग पद्धति इस परिकल्पना पर कार्य करती है कि चित्त में एकाग्रता बढ़ने के साथ अस्थिरता कम होती जाती है। इसलिये योग एवं दर्शन में मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिये चित्त को एकाग्र करने की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन किया गया है। जिसमें चित्त को एकाग्र करने की एक पद्धति प्राणायाम है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम पद्धति के बारे में कहा है–

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।[2]

अर्थात् प्राण वायु को बार–बार बाहर निकालने एवं रोकने के अभ्यास से चित्त एकाग्र हो जाता है। श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया तथा मन की क्रियाशीलता का गहरा सम्बन्ध है। मानसिक अस्थिरता की दशा में श्वास–प्रश्वास की गति तीव्र होती है। श्वास–प्रश्वास के नियन्त्रण का अभ्यास कर मानसिक स्थिरता पायी जा सकती है। हठयोग में कहा गया है–

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।[3]

अर्थात् वायु (श्वास) के चंचल (तीव्र) होने पर चित्त भी चंचल (अस्थिर) होता है तथा वायु के निश्चल होने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है।

वैदिक वाङ्मय में भौतिक वायु द्वारा चिकित्सा करने के प्रमाण प्राप्त होता हैं। ऋग्वेद व अथर्ववेद में अनेक मन्त्रों में वायु को भेषज्, अमृत आदि नामों से सम्बोधित किया है। वायु को अमृत का निधि व दीर्घायु कहा गया है।[1]

''प्राणयति जीवयति इति प्राणः'' अर्थात् मुख्य रूप से जो प्राण मात्र के जीवन का आधार बना हुआ है वह 'प्राण' है। यद्यपि अन्य महाभुत भी शरीर के सहायक हैं किन्तु सब भूतों में सूक्ष्म 'आकाश' से दूसरी श्रेणी पर यह सूक्ष्म है। सूक्ष्म शक्ति स्थूल की अपेक्षा प्रबल होती है। इसलिए सुक्ष्मता तथा परम उपयोगिता की दृष्टि से इसको विशेष रूप से जीवनदाता कहा जाता है। महाभूत 'वायु' के समान ही पह 'प्राण' भी सदा गमनशील बना रहता है। किसी भी काल में इसका व्यापार नहीं रूकता, जागृत, स्वप्न, निद्रा में भी यह कभी नहीं ठहरता सदा क्रियारत रहता है।[2]

''अन प्राणने'' इस धातु पाठ के अनुसार 'अन्' शब्द गतिशील का वाचक है। क्योंकि 'प्र' आदि उपसर्ग पूर्व में रहने पर उसकी विशेष गति ही सिद्ध होती है। अतः प्राण का प्रत्यक्ष नाम 'अन' भी है।[3य4]

मनुष्य के शरीर में भौतिक, अभौतिक अनेक शक्तियाँ हैं। उन सब का शक्तियों में प्राण शक्ति का महत्त्व सर्वोपरि है। अन्य शक्त्यिों के अस्त होने पर भी इस शरीर में प्राण शक्ति रहती है, परन्तु प्राण के अस्त होने पर कोई अन्य शक्ति कार्य करने के लिए समर्थ नहीं हो सकती क्योंकि प्राणों के अधीन सम्पूर्ण शरीर है।[5]

प्राण का अर्थ है– जीवन साधना, आत्मा जब शरीर में आती है तब उसके साथ प्राण भी आते हैं। प्राण के अन्दर आने और बाहर जाने से शरीर में आत्मसत्ता का बोध होता है। आत्मा शरीर को छोड़कर चली जाए, तो प्राण भी शरीर में नहीं रहते। आत्मा अभौतिक है, उसकी भुख को भौतिक पदार्थ नहीं मिटा सकते। मनुष्य जो कुछ भी ग्रहण करता है, वह सब प्राण को ही अर्पित करता है। इसीलिए प्राणों के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा है– प्राण, जो तेरा स्वरूप वाणी में स्थित है तथा जो नेत्रों में और जो मन में व्याप्त है। उसको कल्याणमय बना ले, तु शरीर को छोड़कर बाहर मत जा।[6]

जितने भी मनुष्य, पशु आदि शरीर धारी प्राण हैं। वे सब प्राण के सहारे जीवित हैं। प्राण के बिना किसी का भी शरीर जीवित नही रह सकता, क्योंकि प्राण ही प्राणियों की आयु है, इसलिए यह प्राण 'सर्वायुष' कहलाता है।[7]

समस्त प्राणी प्राण से उत्पन्न होते हैं तथा सभी प्राण से जी जीते हैं। यदि श्वास का आना–जाना बंद हो जाए। यदि प्राण द्वारा अन्न ग्रहण न किया जाए तथा अन्न का रस समस्त शरीर में न पहुँचाया जाये तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं हर सकता और मरने के बाद सब प्राण में ही प्रतिष्ट हो जाते हैं। यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि मृत शरीर में प्राण नहीं रहते।[8 9]

आयुर्वेद में वायु (प्राण) को स्वतंत्र व नित्य तथा सर्वत्र गतिमान होने से इसको 'स्वयंभू' कहते हैं एवं सूक्ष्म परमाणु होने से ही स्वयंभू है। यह स्थावर एवं जगत पदार्थो के कारण का कार्यात्मक रूप से विद्यमान है। सब प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश में यही प्राण कारण भूत है, इसलिए सम्पूर्ण लोक इसको नमस्कार करता है। अदृश्य होते हुए भी इसके कार्य व्यक्त है।[10] आचार्य सुश्रुत ने अग्नि (पित्त के पांच भेद), सोम (कफ, रस, शुक्र, द्रव भाग) वायु, सत्व, रज, तम पांचों इन्द्रियों और भूतात्मा (जीव) ये प्राण कहे हैं। शरीर का प्राणन इनके कारण ही होता है।[11]

आयुर्वेद में वायु को प्राण संज्ञा प्रदान की गई है साथ ही वायु को आयु भी कहा गया है। वायु के द्वारा ही प्राणायाम निमेषादि क्रियाएं सम्पन्न होती है।[12]

वायु प्राणायाम क्रिया का सम्पादन करती है, परन्तु योगोक्त प्राणायाम इस वायु की क्रिया से भिन्न है, वहाँ इस वायु की क्रिया पर नियन्त्रण ही प्राणायाम कहा गया है। जैसा की महर्षि पतंजलि ने

'तस्मिन्' सति श्वास प्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः।[13] कहा है। वैसे आयुर्वेद में वायु को यंत्र तंत्र को धारण करने वाली कही गयी है। प्राण, उदान, व्यान, समान, अपान की आत्मा के रूप में कहा गया है तथा शरीर की सभी चेष्टाओं का नियन्त्रण एवं प्रणयन करती है तथा सभी इन्द्रियों को अपने विषयों में प्रवृत करने वाली है। इस प्रकार प्राण को शरीर एवं शरीरावयव को धारण करने वाला, चेष्टा गति आदि का नियन्त्रण एवं प्रणयन करने वाला कहा गया है, इसी प्राण की गति पर नियन्त्रण करना प्राणायाम शब्द से जाना जाता है।[14]

मनुष्य के लिए अपनी इन्द्रियों को वश में करने का मात्र उपाय प्राणायाम ही है क्योंकि इन्द्रियाँ, मन से युक्त होकर ही अपना कार्य करती है। अतः मन को नियन्त्रित करने का एकमात्र उपाय है कि प्राणों की साधना करो। 'चले वाते चले चितं, निश्चले निश्चलं भवेत्'।[15] श्वास–प्रश्वास अर्थात् प्राणों के आवागमन से मन–चित्त भी चलता है, और यदि प्राणों को रोक दिया जाए अर्थात् प्राणायाम विधिपूर्वक किया जाए तो मन की चंचलता भी अवरूद्ध हो जाती है। आधुनिक समय में जितनी भी भयानक व्याधियाँ है वह सब मनोदैहिक (Psychomatic) है।[16] जैसे कैंसर, दमा, हृदय रोग, वृक्क, यकृत सम्बन्धी अधिकाश रोग मनोदैहिक है अर्थात् मन की विकृत अवस्था होने के कारण यह रोग उत्पन्न होते है।[17] हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आठ कुम्भक प्राणायामों का व्याधियाँ दूर करने का उल्लेख वर्णित है जैसे सूर्यभेद प्राणायाम करने से मस्तक शुद्ध रहता है तथा अस्सी प्रकार के वात दोष (मुख्यतः गठिया व सन्धिवात) नष्ट होते हैं। उदर में पैदा हुए कृमियों, शिरपीड़ा, नासाकोप, वातशूलों का निवारण करता है।[18] उज्जाई प्राणायाम कण्ठ से श्लेष्म आदि के दोषों को नष्ट करता है, जठराग्नि को बढ़ाता है। धातु के कारण उत्पन्न दोषों को नष्ट करने वाला, दमा, क्षय सभी प्रकार के फुफ्फुसीय रोग नष्ट होते हैं। सभी प्रकार के हृदय रोग, पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं।[19]

सीत्कारी प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक शक्ति को बल मिलता है। भूख, प्यास, आलस्य और निद्रा को दूर करता है तथा पित्त जनित रोग शान्त होते हैं।[20]

शीतली प्राणायाम के अभ्यास से गुल्म, प्लीहा, ज्वर, तपोदिक, अपच, पित्तदोष, सर्वदश आदि का विष नष्ट हो जाता है।[21] इसी प्रकार भासिका प्राणायाम से त्रिदोष (वात, पित्त, कफ), गले की सूजन, नासिका, वक्ष स्थल की व्याधियाँ नष्ट होती है, यह दमा, क्षय आदि रोगों का भी निवारक है।[22]

भ्रामरी प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मन शान्त, व हृदय को बल की प्राप्ति होती है।[23]

इसलिए मनुष्य को अपने जीवन में उपरोक्त वर्णित प्राणायाम की साधना सावधानी व योग्य गुरु के दिशानिर्देश में करनी चाहिए। विधिपूर्वक प्राणायाम करने से मनुष्य को सर्वव्याधियों व अकाल मृत्यु का भय नष्ट होकर दीर्घ आयु को प्राप्त होता है। वेदों व योग ग्रन्थों में वर्णित मंत्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आधुनिक जीवन शैली से जनित रोगों को नष्ट करने में वेदों व योग में वर्णित प्राणायाम एक पूर्ण चिकित्सा पद्धति है। इस चिकित्सा पद्धति के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को आनन्दमय बना सकता है।

संदर्भ

1. योगसूत्र, 2/3.
2. योगसूत्र, 1/34.
3. हठप्रदीपिका, 2/2.
4. यददो वात ते गृहे, अमृतस्य निधिर्हितः ।। ऋग्वेद 10.186.3
5. The subtle force is more powerful than gross one. Therefore from the point of view of subtlety and supreme utility it is specially known as Jivan-Tatva; Science of soul, Divine life society publication. 73
6. सर्व प्रकार चेष्टा व्याप्तिगुणप्रदर्शनार्थमन इति प्राणस्य प्रत्यक्ष नाम। छन्दो0 5/2/1
7. अर्थववेद संहिता 11.4.1
8. प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम्। अथर्व0 11/4/15
9. या ते तनूवीर्चि प्रतिष्ठिता या श्रौते या च चक्षुषि। या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरू मोत्क्रमीः।। प्रश्नो0 2/12,
10. प्रश्नो0 2/11
11. मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणोहि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते।। तैतिरीय0 2/3/1
12. तैतिरीय0 3/3/1
13. सुश्रुत संहिता, निदान स्थान, प्रथमाध्याय–7 चौखम्बा पब्लिकेशन।
14. अग्निः सोमो वायुः सत्व रजस्तः पन्चेन्द्रियाणि भूतात्मेतिप्राणाः। सुश्रुत संहिता, शरीर स्थान 3/4
15. वायुः प्राणसंज्ञाप्रदानम्, वायुः आयुः वायुप्राणापानौ, प्राणौरक्षयश्चतुभ्योहि प्राणांजहाति (च0संहिता 12/9)
16. योगसूत्र 2/49
17. नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः। च0सं0 12/8
18. हठयोगप्रदीपिका 2/2
19. Stress management through yoga, Chaukhamba publication, 25.
20. Stress management through yoga, Chaukhamba publication, 26.
21. कपाल शोधनं वातदोषहनं कृमिदोषह्नत्। पुनः पुनरिदं कार्य सूर्य भेदनमुतमम् (हठयोग प्रदीपिका 2/50)
22. तदैव 2/53
23. तदैव 2/54
24. तदैव 2/58
25. तदैव 2/64–65
26. तदैव 2/68